13 भारतीय शिक्षा व्यवस्था में स्कूल–नायक के रूप में प्रधानाध्यापक

जगन्नाथ राव

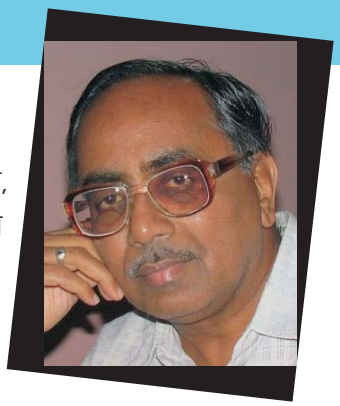

अपनी तमाम भूमिकाओं में कर्नाटक भर के प्राथमिक स्कूलों की यात्राओं के दौरान मैं स्कूली बच्चों से एक रस्मी सवाल पूछा करता था, 'बड़े होने पर तुम क्या बनना चाहोगे?' बच्चे अलग–अलग जवाब देते, 'डॉक्टर, इंजीनियर, पायलट' आदि। पर जब भी बच्चे कहते कि वे शिक्षक बनना चाहते हैं, तो मुझे सुखद आश्चर्य होता था। इससे मुझे उस स्कूल के बारे में कुछ बातें समझ में आ जाती थीं। जैसे–

- विद्यार्थी अपने शिक्षकों से काफी प्रभावित हैं।
- उनके स्कूल में शिक्षकों की एक समर्पित टीम है।
- प्रधानाध्यापक द्वारा अच्छा नेतृत्व प्रदान किया जा रहा है।
- यह निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि शिक्षक और प्रधानाध्यापक बच्चों के लिए ऐसे 'आदर्श व्यक्ति' साबित हुए थे जिनका वे अनुकरण करना चाहते थे।

प्रधानाध्यापक स्कूल को प्रभावी नेतृत्व दे सके और वह शिक्षकों को अपने द्वारा निर्धारित मानकों के मुताबिक प्रदर्शन करने के लिए प्रेरित कर सके, इसके लिए उसकी ओर से कम से कम एक हद तक समर्पण की आवश्यकता होती है। पर ऐसे उदाहरण बहुत कम ही होते थे।

स्कूल द्वारा दी जाने वाली शिक्षा के स्तर का सम्बन्ध स्कूल में प्रभावी नेतृत्व प्रदान करने की प्रधानाध्यापक की भूमिका से भी होता है। वस्तुतः अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा उत्तर–पूर्वी कर्नाटक के लर्निंग गारण्टी प्रोग्राम के तहत स्कूलों में करवाए गए सर्वे से पता चला कि स्कूल में प्रधानाध्यापक की मौजूदगी या गैर मौजूदगी से स्कूल में पढ़ाई के स्तर पर बहुत फर्क पड़ता है।

गुजरे वर्षों में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए राज्यों द्वारा किए गए प्रयासों के चलते आज सरकारी स्कूलों में दाखिला ले रहे बच्चों में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, शहरी झोपड़पट्टियों और प्रवासी समूहों की पढ़ने वाली पहली पीढ़ी है। यानी उन समूहों के बच्चे जिनके पास इससे पहले शिक्षा की सुलभता नहीं थी, आज सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। क्या हमारे स्कूल, शिक्षक और प्रधानाध्यापकों की तैयारी ऐसी है कि वे इन बच्चों को प्रभावी ढंग से सम्भालते हुए उन्हें स्तरीय शिक्षा दे सकें?

इस सन्दर्भ में, आइए स्कूल को प्रभावी नेतृत्व प्रदान करने में प्रधानाध्यापक की भूमिका और उन सीमाओं की चर्चा करें जिनके भीतर रहकर उसे इसे निभाना पड़ता है।

ऐसे कई क्षेत्र हैं जहाँ प्रधानाध्यापक वास्तव में प्रभाव डाल सकते हैं।

प्रधानाध्यापक द्वारा स्कूल के अन्दर, कई क्षेत्रों में एक प्रभावी नेतृत्व देने की भूमिका निभाई जा सकती है।

1. प्रशासनः स्कूल के शिक्षकों की सहायता से संस्थानिक योजना, वार्षिक शैक्षणिक योजना और स्कूल की समय–सारणी तैयार करना। और फिर इन्हें व्यवहारिक रूप में लागू करना।

2. शैक्षणिक निरीक्षण और शिक्षकों को प्रोत्साहन देनाः स्कूल के सभी शिक्षकों के शैक्षणिक कार्यों के लिए आन्तरिक शैक्षणिक निरीक्षक के रूप में कार्य करना। उसे स्कूल के सभी शिक्षकों द्वारा तैयार किए जाने वाले 'शिक्षण कार्य के वार्षिक कार्यक्रम' तथा 'साप्ताहिक पाठ योजनाओं' का निरीक्षण करना पड़ता है। शिक्षकों द्वारा कक्षा में किए जाने वाले शिक्षण–कार्य का भी प्रभावी ढंग से निरीक्षण करना होता है और उन्हें आवश्यक पेशेवर तथा संसाधन–सम्बन्धी सहयोग देना पड़ता है। प्रधानाध्यापक का एक और महत्वपूर्ण कार्य परीक्षाओं के संचालन तथा समय से विद्यार्थियों के नतीजों की घोषणा किए जाने का ध्यान रखना होता है। इससे बच्चों के उपलब्धि स्तरों पर नजर रखने में तथा पढ़ाई में कमजोर बच्चों की मदद करने के लिए प्रभावी सुधारात्मक उपायों को ढूँढ़ने में मदद मिलती है।

3. अनुशासनः नेतृत्व की एक प्रभावी भूमिका अदा करने के प्रयास में यह जरूरी है कि प्रधानाध्यापक स्कूल में अनुशासन लागू करे। उसे स्कूल की विभिन्न जिम्मेदारियों को निभाने में खुद भी पाबन्द होना चाहिए। अपनी प्रशासनिक भूमिका में उसे विद्यार्थियों और शिक्षकों, दोनों की उपस्थितियों पर नियमित तौर पर नजर रखना होती है।

4. स्कूल की मौजूदा सुविधाओं का प्रभावी ढंग से प्रबन्धनः मौजूदा आधारभूत सुविधाओं का प्रभावी उपयोग, कर्मचारियों और शिक्षकों का प्रभावी प्रबन्धन। अन्य उपलब्ध संसाधनों – प्रयोगशाला, पुस्तकालय, सहायक शिक्षण सामग्री, शिक्षकों की निर्देशिकाओं, खेलों से सम्बन्धित सामग्री इत्यादि का प्रबन्धन।

5. स्थानीय समुदाय के साथ निकट सम्पर्क बनानाः प्रधानाध्यापक को 'स्कूल प्रबन्धन समिति' की बैठकों के माध्यम से लोगों से मिलना और बातचीत करता होता है। स्कूल के विकास के लिए सामूहिक संसाधनों का भी प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करना होता है।

6. स्कूल द्वारा आयोजित अतिरिक्त गतिविधियों की निगरानी रखनाः खेलों, सांस्कृतिक गतिविधियों, स्कूली प्रदर्शनियों का आयोजन करना, राष्ट्रीय व अन्य महत्वपूर्ण दिवसों को मनाना, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के स्थानों के वार्षिक दौरे और यात्राएँ आयोजित करना, विभिन्न स्तरों पर आयोजित होने वाली तरह–तरह की प्रतिस्पर्धाओं में स्कूली विद्यार्थियों की भागीदारी तय करवाना इत्यादि। इन सभी गतिविधियों में प्रधानाध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

'नेतृत्वदायी भूमिका' अपनाने के लिए प्रभावित करने वाले कारक

स्कूल के अन्दर प्रभावशाली नेतृत्वकारी भूमिका निभाने की प्रधानाध्यापक की क्षमता कई कारकों पर निर्भर करती है – उसकी उम्र, लिंग, योग्यता, अनुभव; व्यावसायिक प्रशिक्षण; स्कूल में अन्य शिक्षकों की तुलना में वरिष्ठता; स्कूल का आकार, प्रत्येक कक्षा का आकार, तथा बहुश्रेणीय (मल्टी–ग्रेड) वर्ग में आने वाली कक्षाओं की संख्या; मध्यान्ह भोजन कार्यक्रमों जैसी विभिन्न शिक्षा प्रोत्साहन योजनाओं का प्रभावी ढंग से प्रबन्धन करने की क्षमता; और स्कूल के भीतर अपने साथियों से, तथा पर्यवेक्षण कर्मचारियों, जैसे सी.आर.सी., बी.आर.सी. तथा ब्लॉक स्तर के अन्य व्यक्तियों से उसे मिलने वाला सहयोग। इसके अलावा उसकी नेतृत्वकारी भूमिका स्कूल के भीतर उसे सुलभ अन्य भौतिक, मानवीय और शैक्षणिक संसाधनों द्वारा भी निर्धारित होती है।

सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक की सीमाएँ

प्रधानाध्यापक की नेतृत्वकारी भूमिका की चर्चा करते हुए, हमें सरकारी और निजी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकाओं के बीच मौजूद महत्वपूर्ण अन्तरों और सीमाओं पर भी ध्यान देना होगा। किसी निजी स्कूल के संचालन में सामुदायिक और सरकारी दखलंदाजी तकरीबन नहीं ही होती। यह मानकर भी चला जाता है कि शिक्षकों एवं विद्यार्थियों में अनुशासन तो होगा ही।

पर सरकारी स्कूल में ऐसा नहीं होता। वहाँ प्रधानाध्यापक को अपनी तमाम कुशलताओं का इस्तेमाल करते हुए सामुदायिक नेताओं और पंचायती राज संस्थाओं के साथ सावधानीपूर्वक चलना होता है। विद्यार्थी तथा शिक्षक दोनों ही में अनुशासन बनाए रखने की समस्या तो हमेशा ही रहती है। साथ ही, सी.आर.पी. से लेकर ब्लॉक स्तरीय शिक्षा अधिकारी तक सभी सरकारी पर्यवेक्षण कर्मचारियों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाकर रखने का महत्वपूर्ण मुद्दा भी है।

इसके अलावा, एक सरकारी स्कूल के प्रधानाध्यापक को कई ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जो निजी स्कूलों में नहीं आतीं –

1. स्कूल नहीं आ रहे बच्चों को स्कूल में लाने के लिए सार्थक प्रयास करना।
2. विभिन्न कारणों से स्कूल छोड़ चुके बच्चों की निरन्तर तलाश में रहना तथा ऐसे बच्चों के माता–पिता के साथ लगातार सम्पर्क बनाए रखना ताकि स्कूल छोड़ने के रवैये का प्रचलन घटाया जा सके।
3. प्रेरणा और प्रोत्साहन के लिए योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करना और इस्तेमाल में लाना ताकि पालकों और निरीक्षणकर्ताओं की ओर से इस सम्बन्ध में कोई शिकायत न हो।
4. बहुश्रेणीय (मल्टी–ग्रेड) परिस्थितियों में, जो कि आज अधिकांश सरकारी स्कूलों में व्याप्त हैं, प्रधानाध्यापकों को शैक्षणिक तौर पर नई कार्यनीतियाँ ईजाद करने या उन्हें इस्तेमाल करने की गुंजाइश या स्वतन्त्रता नहीं मिलती।
5. बच्चों के बीच में लैंगिक समता हासिल कर पाना, जो विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरी झुग्गियों में एक चुनौती है।
6. नियमपूर्वक प्रतिदिन मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम की देख–रेख करना।
7. अलग–अलग योग्यता, प्रशिक्षण, अनुभव, पृष्ठभूमियों वाले तथा विषयवस्तु और अध्यापन के बारे में अलग–अलग स्तर के ज्ञान वाले शिक्षकों के साथ कार्य करने की क्षमता।
8. समता के मुद्दे से जुड़ी विभिन्न समस्याओं से निपटना और ऐसा सन्तुलन बना कर चलना कि वह अपने साथियों या स्थानीय लोगों के बीच अलग–थलग न पड़ जाए।

इसके अलावा कई और ऐसे कारक हैं जो किसी सरकारी स्कूल में प्रभावी नेतृत्वकारी भूमिका अदा करने में प्रधानाध्यापकों की सीमाएँ तय करते हैं।

क. व्यवस्थागत कारकः

1. सम्बन्धित राज्य सरकारों द्वारा गुणवत्ता सम्बन्धी चिन्ताओं पर ध्यान दिए बगैर प्राथमिक शिक्षा सुविधाओं का विशाल पैमाने पर विस्तार किया जाना।
2. अक्षम स्थानान्तरण नीति जो बस शिक्षकों की जरूरतों को ध्यान में रखती है, पर स्कूलों की जरूरतों को नहीं।
3. लम्बे समय तक स्कूलों में पदों का रिक्त रहना।
4. अधिकारियों द्वारा रिक्त पदों को अनुचित रूप से भर देना।
5. प्रेरण–प्रोत्साहन के लिए विभिन्न सामग्रियों के वितरण को लेकर प्रधानाध्यापकों पर बहुत ज्यादा बोझ लादा जाना।

6. शिक्षकों की तथा उच्च शिक्षा में कम अंक हासिल करके शिक्षकों के पदों के लिए आवेदन करने वाले लोगों की बहुत बड़े पैमाने पर भरती।
7. स्कूल में खराब स्तर की तथा अपर्याप्त आधारभूत सुविधाएँ।
8. स्कूल के भीतर शैक्षणिक संसाधनों का पर्याप्त मात्रा में न होना।
9. प्रेरणा–प्रोत्साहन से सम्बद्ध सामग्रियों को प्राप्त करने, आँकड़ों के एकत्रीकरण, मीटिंगों इत्यादि के लिए अक्सर प्रधानाध्यापकों को ब्लॉक कार्यालयों में बुलाया जाना।
10. उच्च छात्र–शिक्षक अनुपात (पी.टी.आर.) यानी कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होना।
11. कई राज्यों में मध्यान्ह भोजन योजना लागू होने से प्रधानाध्यापकों पर पेशेवर कार्य का बोझ बहुत बढ़ गया है।
12. कई अशैक्षणिक तथा विभाग से अतिरिक्त गतिविधियों – मतदाता सूचियों का परिशोधन, जनगणना, सभी प्रकार के चुनाव – में प्रधानाध्यापकों का इस्तेमाल किया जाना, जिसमें बहुत सा अकादमिक समय देना पड़ता है और फलस्वरूप शिक्षकों को मजबूर होकर स्कूली कार्यों को नजर अन्दाज करना पड़ता है।

ख. पेशेवर / शैक्षणिक कारक

1. प्रधानाध्यापकों का अपने कर्तव्यों के निर्वाह में गैर–पेशेवर होना।
2. प्रधानाध्यापकों को स्कूल–नेतृत्व के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण न मिलना।
3. निरीक्षण टीम की ओर से अपर्याप्त एवं कमजोर शैक्षणिक सहयोग।
4. पाठ्यपुस्तकों तथा अध्ययन–अध्यापन सामग्री (टी.एल.एम.) की कमजोर गुणवत्ता।
5. अपर्याप्त शिक्षक संसाधन सामग्री।
6. प्राथमिक चरण पर कमजोर बच्चों को रोककर रखने की नीति न होना, जिसके कारण बच्चों में सीखने के प्रति उत्साह की कमी रहती है।
7. प्रेरित एवं उत्साही शिक्षकों की कमी।
8. बहुश्रेणीय (मल्टी–ग्रेड) अध्यापन एक प्रमुख कारक है, खासतौर पर अधिकांश निम्न–प्राथमिक सरकारी स्कूलों में – प्रधानाध्यापक एवं अन्य शिक्षकों, सभी को अनुशासन बनाए रखने के लिए परिश्रम करना पड़ता है जिसके चलते अन्य शैक्षणिक गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं।
9. शिक्षकों की अनुपस्थिति स्कूलों के प्रभावी प्रदर्शन के रास्ते में एक बड़ी बाधा है।
10. स्कूल का आकारः स्पष्ट है कि स्कूल छोटा होगा तो उसके कई लाभ होंगे।
11. कक्षा का आकारः एक ज्यादा बड़ी कक्षा का अर्थ होगा कि प्रत्येक विद्यार्थी पर अलग से ध्यान दिए जाने के लिए कम समय मिलेगा।

ग. सामाजिक कारक

1. स्कूल के कामकाज के प्रति स्थानीय लोगों का उदासीन रवैया।
2. स्कूल में आवश्यक सुविधाएँ मुहैया करवाने में समुदाय की असमर्थता।
3. स्थानीय नेताओं द्वारा अपने बच्चों को निजी स्कूलों में पढ़ने भेजना और इस कारण से सरकारी स्कूल के कामकाज के प्रति उदासीन रुख अपनाना।
4. स्थानीय नेताओं द्वारा स्कूल के कामकाज में जरूरत से ज्यादा दखलंदाजी।
5. स्थानीय स्तर की राजनीति जो आमतौर पर स्कूल के प्रभावी प्रदर्शन में बाधा डालती है।
6. स्कूल प्रबन्धन समितियों का कामकाजी तौर पर नदारद होना।

वर्तमान परिदृश्य में, ऐसे कुछ और भी कारक हैं जो किसी प्रधानाध्यापक के लिए नेतृत्वकारी भूमिका को प्रभावी ढंग से निभाने में अड़चनें पैदा करते हैं :

1. कई राज्यों में प्राइमरी स्कूलों के प्रधानाध्यापकों का कोई पृथक काडर नहीं है। स्कूल के वरिष्ठतम शिक्षक को ही प्रधानाध्यापक मनोनीत कर दिया जाता है। यही बात लगभग सभी राज्यों के छोटे स्कूलों लगभग सभी निम्न प्राइमरी स्कूलों पर भी लागू होती है, जहाँ वरिष्ठतम शिक्षक को ही प्रधानाध्यापक नियुक्त कर दिया जाता है।
2. किसी कारणवश जब किसी वरिष्ठ शिक्षक द्वारा प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य करने से इन्कार कर दिया जाता है तो ऐसे में लगभग हमेशा ही यह दायित्व किसी कनिष्ठ शिक्षक पर आ जाता है। ऐसे में वह सामने आने वाली तमाम बाध्यताओं के चलते दायित्व को प्रभावी ढंग से नहीं निभा पाता।
3. कुछ राज्यों में, जहाँ प्रधानाध्यापक का पद मौजूद है, वहाँ भी नियमित शिक्षकों के एवज में प्रधानाध्यापक का अनुपात इतना कम है, कि उनमें से कुछ ही वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति पाते हैं। और वह भी अपने सेवाकाल के अन्तिम चरण में पहुँचकर, जब उनकी सेवानिवृत्ति में केवल कुछ वर्ष या कुछ

माह ही बचे होते हैं। ऐसे में, वे स्कूल के सुधार आदि के चक्कर में न पड़कर शान्ति से सेवानिवृत्त होना पसन्द करते हैं।

अन्त में, मुझे लगता है कि यह विभागीय निरीक्षण कर्मचारियों की जिम्मेदारी है कि वे प्रधानाध्यापकों के भीतर आत्मविश्वास पैदा करें, उन्हें प्रोत्साहित करें और उन्हें प्रशिक्षित करें ताकि वे स्कूल में अपनी नेतृत्व की भूमिका को प्रभावी ढंग से अंजाम दे सकें।

60 और 70 के विशिष्ट दशकों में स्कूली शिक्षा की अनिवार्यता जैसी कोई बात नहीं थी। उस दौर की ओर मुड़कर देखता हूँ तो मेरी समझ से तब प्राथमिक स्तर पर समर्पित प्रधानाध्यापकों की संख्या 70 प्रतिशत से अधिक रही होगी। पेशेवर प्रशिक्षण के बगैर भी अपनी विद्वता, वरिष्ठता और अपने साथियों तथा विद्यार्थियों के बीच मिलने वाले सम्मान की वजह से वे बेहद प्रशंसनीय ढंग से अपना कार्य कर रहे थे।

शायद, यही बात मैं उन अधिकांश विद्यार्थियों के प्रदर्शन के लिए भी कह सकता हूँ, जो तब प्राइमरी कक्षा 5 के स्तर पर प्रवाहपूर्ण ढंग से पढ़ सकते थे, लिख सकते थे और बुनियादी गणितीय क्रियाएँ कर सकते थे। यह प्रतिशत ऊपर चर्चित कारणों की वजह से हालिया सालों में काफी घटा है। मैं मानता हूँ कि इस मामले में प्रधानाध्यापकों की भूमिका भी एक महत्वपूर्ण कारण रही है।

डी.जगन्नाथ राव कर्नाटक के राज्य शैक्षणिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण विभाग (डी.एस.ई.आर.टी.) के निदेशक रहे हैं। अपने 37 वर्ष के कार्यकाल में उन्होंने ब्लॉक स्तर से राज्य स्तर तक के कई पद सम्भाले। वे 1999 से लेकर 2006 तक कर्नाटक में पब्लिक इंस्ट्रक्शन के निदेशक थे। इस भूमिका में वे माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, जनशाला प्रोजेक्ट, उत्तर–पूर्व कर्नाटक निदेशालय और अन्त में डी.एस.ई.आर.टी. के प्रभारी थे। वे 2010 में प्रकाशित हुई किताब ''Elementary Education in India Status, Issues and Concerns' के लेखक हैं। सेवानिवृत्त होने के पश्चात वे कई शिक्षा समितियों के प्रमुख भी रहे हैं। उनसे djrao303@yahoo.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।